जैन धर्म बनाम जैन साहित्य

डॉ. नरेन्द्र सिंह
प्राध्यापक - हिन्दी
शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

जैन साहित्य की परम्परा लगभग उतनी ही प्राचीन है जितना कि जैन धर्म। भारतीय वांग्मय की उपलब्ध आदिकालीन भाषा संस्कृत है। अन्य धर्मो के पौराणिक साहित्य की तहर जैन धर्म का पौराणिक साहित्य भी संस्कृत में है। हम सब जानते हैं कि प्राकृतें विविध क्षेत्रों की एक तरह की विभाषाएँ थीं। मगध में 'पाली' जन भाषा थी। भगवान महावीर जिस 'धर्म' को सुसंगठित कर रहे थे वह आम आदमी का धर्म था। वे जिन लोगों से अपनी बात कहना चाह रहे थे वे 'पाली' ही समझते थे। अतः उन्होंने अपना संदेश देने के लिए 'पाली' को चुना।

प्राकृतों से अपभ्रंश का विकास हुआ। आदिकालीन हिंदी जो अपभ्रंशों की परम्परा में है उसे चन्द्रधर शर्मा गुलेरी 'प्राचीन हिन्दी' कहते हैं।[1] मागधी और शौरसैनी अपभ्रंशें हिन्दी की दो प्रमुख पूर्व परम्पराएँ हैं। हिन्दी का आधार शौर सैनी अपभ्रंश मानी जाती है। इसी अपभ्रंश में जैन साहित्य लिखा गया। हम कहते हैं कि अपभ्रंश का जैन साहित्य हिन्दी का आदिकालीन स्रोत है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जब 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' लिखा तो उन्होंने अपभ्रंश के इस जैन काव्य को 'सांप्रदायिक साहित्य' कहकर हिन्दी की पीठिका मानने से इंकार कर दिया।[2] बाद में विद्वानों ने माना कि हिन्दी का विकास उसी अपभ्रंश के साहित्य की परंपरा में है जिसमें सिद्ध, नाथ और जैन साहित्य लिखा गया।

हिन्दी के मध्ययुगीन साहित्य में जो मुक्तक और प्रबंध, विभिन्न छंद और काव्य की शैलियों के जो प्रयोग मिलते हैं उसके स्रोत अपभ्रंश के जैन साहित्य में मिलते हैं यहाँ तक कि हिन्दी के वीरगाथा काल के 'रासो काव्य' और भक्ति काल के 'चरित' काव्य के स्रोत अपभ्रंश के जैन आचार्यो के साहित्य में देखे जा सकते हैं। जैन अपभ्रंश काव्य का आरंभ राष्ट्रकूल राजवंश के समय 753 ई. से माना जा सकता है जिसे बाद में 961 के आसपास गुर्जर-सोलंकी राजाओं का आश्रय मिला। बाद में लगभग दो सौ वर्षो तक इस काव्य की परंपरा चलती रही। उसे हम एक ओर प्राचीन गुर्जर काव्य से और दूसरी ओर पुरानी हिन्दी कविता से संबोधित कर सकते हैं। पुष्पदंत और स्वयंभू इस युग के महान कवि हैं। स्वयंभू को हिन्दी का पहला कवि माना जा सकता है।[3]

केवल विचारधारा ही नहीं प्राकृत साहित्य के संदर्भ में जैन साहित्यकारों के साहित्य की चर्चा प्रायः नहीं होती। इसके कई कारण हैं। जिनका मैं यहाँ उल्लेख नहीं करना चाहता पर इतना तय है कि जैन साहित्य अनमोल ग्रंथों से भरा पड़ा है। इन ग्रंथों का साहित्यिक महत्व तो है ही, सांस्कृतिक महत्व भी कम नहीं है। 'कथाकोष प्रकरण' की भूमिका में जैन कथा ग्रंथों की महत्ता बताते हुए मुनि जिनविजय जी लिखते हैं - भारतवर्ष में पिछले ढाई हजार वर्ष के सांस्कृतिक इतिहास का सुरेख चित्रपट अंकित करने में जितनी विस्तृत

और विश्वस्त उपादान सामग्री इन कथा ग्रंथों में मिल सकती है उतनी अन्य किसी प्रकार के साहित्य में नहीं मिल सकती। इन ग्रंथों में भारत के भिन्न-भिन्न ग्रंथ, सम्प्रदाय, राष्ट्र, समाज, वर्ण आदि के विविध कोटि के मनुष्यों के नाना प्रकार के आचार-विचार, व्यवहार, सिद्धान्त, आदर्श, शिक्षण, संस्कार, नीति-रीति, जीवन पद्धति, राजतन्त्र, वाणिज्य-व्यवसाय, अर्थोपार्जन, समाज संगठन, धर्मानुष्ठान एवं आत्म साधन आदि के निदर्शक बहुविध वर्णन निबद्ध हुए हैं जिनके आधार से हम प्राचीन भारत के सांस्कृतिक इतिहास का सर्वांगीण मानचित्र तैयार कर सकते हैं।[4]

'संस्कृति के चार अध्याय' नामक ग्रंथ में रामधारी सिंह दिनकर भारतीय इतिहास की चार क्रांतियों का उल्लेख करते हैं। इन चारों क्रान्तियों ने भारतीय सांस्कृतिक दृष्टि में अपने-अपने समय में आमूल परिवर्तन उपस्थित किया। ये चार क्रांतियॉ हैं - 1) आर्यों का आगमन 2) भगवान महावीर तथा बुद्ध का अपने अपने मत का प्रवर्तन 3) इस्लाम का आगमन 4) यूरोप वासियों का आगमन।[5]

भगवान महावीर द्वारा जैन धर्म की सर्वोत्तम परिणिति व्यवहारिक क्षेत्र में अहिंसा और तात्विक क्षेत्र में अनेकांतवाद या स्याद्वाद है। भगवान महावीर के हिंसा विरोध ने भारत वर्ष के साहित्य सर्जन को प्रभावित किया। हिन्दी साहित्य पर तो यह प्रभाव सर्वाधिक पड़ा। भक्तिकाल के भक्त और संत कवियों की रचनाओं में उस प्रभाव के पग-पग पर दर्शन होते हैं।

जैन धर्म भारत के सबसे पहले अवैदिक धर्मो में से एक है। अन्य धर्मो या विचार धाराओं को कालांतर में वैदिक धर्म ने अपने में समाहित कर लिया किंतु जैन धर्म न केवल देश के सांस्कृतिक जीवन में, बल्कि सामाजिक जीवन में भी एक महत्वपूर्ण कारक बन गया। मनुष्य द्वारा विश्व के अवबोध का आधार इंद्रियों द्वारा प्राप्त प्रत्यक्ष ज्ञान को बताया जाता है। यह विशिष्ट यथार्थवाद प्राचीन काल में विकसित होने वाली अधिकांश शिक्षाओं का एक अंतर्निहित तत्व है। जैन शिक्षा में भौतिक तथा आध्यात्मिक तत्व विरोधी नहीं है। मनुष्य की अनुभव करने और सोचने की क्षमता जीवन की उतनी ही स्वाभाविक अभिव्यक्ति है जितनी कि मनुष्य के आसपास प्राकृतिक जगत में क्रियाशील प्रक्रियायें हैं। पहली दृष्टि में यह सिद्धांत अंशतः ही, क्योंकि जैन धर्म उसमें समाहित तार्किक निर्वचन की दोनों संभावनाओं को बराबर विकसित करता है। वह केवल आध्यात्मिक का 'भौतिकीकरण' ही नहीं करता है, वरन भौतिक का 'आध्यात्मीकरण' भी करता है। आत्मा की पुरातन अवधारणा को उसकी चरम निष्पत्ति पर ले जाया जाता है। आत्मा सभी चीजों में विद्यमान है - पेड़, पौधों और पत्थरों तक को आत्मा से युक्त नित्य है और यह वैज्ञानिक और क्रांतिकारी घोषणा भी कि आत्मा देवताओं द्वारा सृजित नहीं है।

जैन धर्म ने प्राचीन काल तथा मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति पर बहुत भारी प्रभाव डाला है। जैन धर्म की प्रेरणा से व्यापक साहित्य रचना हुई और उसके दर्शन में अंतर्निहित यथार्थवाद के कारण जैनों ने विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रें में दिलचस्पी ली। वैज्ञानिक उपलब्धियों के क्षेत्र में जैनों का योगदान बहुत महत्वपूर्ण रहा है।

दुनिया आज इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर चुकी है और विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञ तरह-तरह के मतों-संप्रदायों की आलोचनात्मक छानबीन में लगे हैं। आज ऐसी कोई भी विचार पद्धति या मत नहीं है, जिसकी जॉच न की जा सके। विश्वास या आस्था महत्वपूर्ण है, लेकिन यह कोई बंद चीज नहीं है। हमारे आज के जमाने में खुलापन अपेक्षाकृत ज्यादा स्वीकार्य है। विवेक और आस्था को परस्पर विरोधी नहीं समझा जाना चाहिए, जैसा कि उन्नीसवीं शताब्दी में माना जाता था। हालांकि तर्क या विवेक ही अंतिम सत्य नहीं है, जबकि

बृद्धिवादी चाहते हैं कि हम इसे ही चरम सत्य मान लें। लेकिन इससे बचना भी नहीं चाहिए । मनुष्य के जीवन में तर्क और आस्था दोनों ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। सवाल यह नहीं है कि तर्क और आस्था में से कौन ज्यादा महत्वपूर्ण है। शायद दोनों समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। इसमें कोई शक नहीं कि आधुनिकतावाद एक सुविधा संपन्न विवेक है, लेकिन उत्तर आधुनिक दौर में अब यह उतना सुविधा संपन्न नहीं है, जितना शुरू के दिनों में था। धर्म और धार्मिक विश्वास आमतौर पर आस्था की श्रेणी में आते हैं। माना जाता है कि ये पवित्र हैं और आलोचना या तार्किक जांच-परख के दायरे से परे हैं। अगर ऐसा ही है, तो क्या सभी धार्मिक विश्वास और धार्मिक व्यवहार किसी आलोचनात्मक मूल्यांकन से परे हैं। धार्मिक विश्वास और व्यवहार कहाँ से आते हैं? असल मुद्दा यही है और इसका संतोषजनक जवाब ढूंढ़ना होगा। आम आस्तिकों के लिए धर्म से जुड़े सभी विश्वास और व्यवहार पवित्र और अपरिवर्तनीय होते हैं और न तो इसकी कोई आलोचनात्मक छानबीन की जा सकती है और न इन्हें बदला जा सकता है। किन्तु यदि हमने उचित मानसिक उपकरणों के साथ 21वीं सदी में प्रवेश किया है तो धर्म को लेकर उठते सवालों के जबाब तलाशने ही होंगे।

इक्कीसवीं शताब्दी के आरंभ में दुनियॉ के तमाम धर्म प्रामाणिकता के निशाने पर हैं। बीसवीं शताब्दी में यूरोप में नीत्से, ईश्वर की मृत्यू की घोषणा कर चुका है, और मार्क्स धर्म को 'अफीम का नशा' कह चुका है। फिर हमारे समय को तो 'उत्तर आधुनिक' कहा जा रहा है। इस समय जब धर्म का इस्तेमाल प्रायः गलत लोगों द्वारा हो रहा हो, जिस कारण धर्म विरोध पैदा कर रहा हो, धर्म वैमनस्य पैदा कर रहा हो, धर्म आतंकवाद पैदा कर रहा हो तो उसके 'धर्म' होने पर ही संदेह होता है।

सन्दर्भ

1. पुरानी हिन्दी-चन्द्रधर शर्मा गुलेरी
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास-रामचन्द्र शुक्ल
3. हिन्दी साहित्य का आधिकाल- हजारी प्रसाद द्विवेदी
4. कथाकोष प्रकरण-मुनि जिनविजय
5. संस्कृति के चार अध्याय-रामधारी सिंह दिनकर